दो शब्द

'बचपन की कहानियां' शरत् बाबू की 'छेले-बेलार गल्प' नाम से १९३८ ई० में, उनके स्वर्गवास के बाद प्रकाशित कहानियों में केवल चार कहानियों का अनुवाद है।

पहली तीन कहानियों में हास्य की ऐसी अद्भुत छटा है कि पाठक हंसी से लोट-पोट हो जाता है। चौथी कहानी पहली तीन कहानियों से भिन्न—गंभीर है।

इन कहानियों के लेखक से हिन्दीवाले बंगला-वालों से कुछ भी कम परिचित नहीं है। हमें हिन्दी के किशोर पाठकों के हाथों में सस्ते संस्करण में इन्हें देते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

पढ़ाने बैठेंगे तो इसे ऊधम मचाने और शैतानी करने का अवसर नहीं मिलेगा।"

सुनकर लल्लू के पिता बोले, "नहीं, बिना घर मास्टर रखे ही इसे पढ़ना होगा। मेरे लिए भी कभी घर पर मास्टर पढ़ाने नहीं आया। फिर भी अपने ही प्रयत्न और परिश्रम से, तरह-तरह की कठिनाइयां और कष्ट झेलकर मैंने ऊंची शिक्षा प्राप्त की और आज नामी वकील हूं।"

उनकी इच्छा थी कि लड़का भी उसी तरह पढ़े। हां, लल्लू के लिए एक शर्त उन्होंने लगा दी—जिस वर्ष लल्लू अपनी कक्षा में प्रथम नहीं आएगा, उसके बाद उसके लिए घर पर मास्टर पढ़ाना प्रारंभ कर देंगा।

पिता के इस निश्चय से लल्लू की जान-में-जान आई और उसने चैन की सांस ली। पर मां से वह इसलिए चिढ़ गया कि वे उसकी स्वतंत्रता को छीनना चाहती है। वह जानता था कि घर में मास्टर को बुलाना और पुलिस को बुलाना बराबर था।

लल्लू के पिता अच्छे पैसेवाले थे। उनकी वकालत खूब चलती थी। कुछ साल पहले उन्होंने पुराने मकान को गिराकर नया तिमंजिला भवन बनवाया था। लल्लू की धर्मपरायणा मां की इच्छा थी कि उनके गुरु महाराज उस नए भवन में अपने पवित्र चरण रखें तो उन चरणों की धूल से वह भवन अपने को पवित्र करे। किन्तु गुरु महाराज बूढ़े हो गए हैं और फरीदपुर से इतनी दूर आने के लिए तैयार नहीं होते। पर अब इस बार गुरु महाराज स्मृतिरत्न सूर्यग्रहण के पर्व पर काशी में स्नान करने आए थे, इसलिए वे वापस लौटते समय लल्लू की मां नन्दरानी को आशीर्वाद देते जाएंगे—इस आशय का पत्र उन्होंने लिख भेजा। नन्दरानी ने इस सुयोग को अपना अहोभाग्य समझा और उनके आनन्द की सीमा न रही।

नन्दरानी गुरु महाराज के स्वागत-सत्कार की तैयारी में लग गई। इतने दिनों बाद उनकी मनोकामना पूरी होने वाली है—गुरुदेव के चरण-स्पर्श कर उनका घर और वे पवित्र हो जाएंगी।

सीढ़ियां चढ़ने-उतरने में गुरुदेव को कठिनाई न हो इसलिए नीचे का कमरा उनके लिए खाली किया गया। निवाड़ का नया पलंग उनके लिए आ गया। इसी कमरे में एक ओर गुरु जी के पूजा-पाठ के लिए स्थान बनाया गया।

कुछ दिनों बाद गुरुजी आ पहुँचे किन्तु संयोग की बात कि इसी दिन आकाश में काली-काली घटाएं छा गईं और ज़ोर की हवा के साथ मूसलाधार पानी बरसने लगा। ऐसा लगता जैसे आकाश फट पड़ा हो। आंधी और पानी थमने का नाम नहीं ले रहे थे।

इधर लल्लू की मां को पकवान बनाने, फल-फूल की व्यवस्था करने आदि के कामों से ज़रा-भर भी अवकाश नहीं था। इसी बीच वे क्षण-भर के लिए नीचे उतर आईं और गुरुजी के लिए नए पलंग पर गद्दा-चादर बिछाकर और मसहरी लगाकर फिर से काम में जुट गईं। गुरुजी की छोटी-बड़ी प्रत्येक सुख-सुविधा के काम को वे स्वयं देख रही हैं। उन्हें नौकरों पर भरोसा नहीं था। बूढ़े गुरु महाराज को

उनके घर आकर तनिक भी कष्ट उठाना पड़े, यह नन्दरानी को स्वीकार नहीं था।

भोजन और बातचीत करते रात हो गई। बूढ़े गुरुदेव यात्रा की थकान के कारण पलंग पर जाकर लेट गए। अब जाकर नौकर-चाकरों को विश्राम मिला।

बढ़िया पलंग और मुलायम गद्दे पर लेटकर गुरुजी को बड़ा आराम मिला और उन्होंने मन-ही-मन अपनी श्रद्धालु शिष्या को शुभाशीर्वाद दिया।

किन्तु आधी रात के लगभग गुरुजी की नींद उचट गई। छत से पानी टपक-टपककर मसहरी पर गिर रहा था और मसहरी में से उनके भारी-भरकम पेट पर। ओह! यह पानी कितना ठंडा था! हड़बड़ाकर वह पलंग से उठ पड़े। पेट को अंगोछे से पोंछते हुए अपने-आपसे कहने लगे—'नन्दरानी ने घर तो नया बनवाया पर लगता है पच्छिम की कड़ी धूप से छत फट गई है।

निवाड़ के पलंग को दूसरी ओर खिसकाना कठिन नहीं था। गुरुजी उसे मसहरी-समेत कमरे के

दूसरी ओर खींच ले गए और चैन की सांस लेकर लेट गए। लेकिन एक मिनट भी नहीं बीतने पाया था कि

उस ठंडे पानी की बूंदें फिर उसी तरह और पेट पर उसी जगह टपकने लगीं।

पंडित स्मृतिरत्न फिर उठ खड़े हुए, फिर पलंग

को घसीटकर कमरे के तीसरे किनारे ले गए। बोले, छत इस सिरे से उस सिरे तक फट गई जान पड़ती है। लेटते ही फिर ठंडे पानी की बूंदें टप-टप तोंद पर गिरने लगीं। फिर उठ खड़े हुए। अंगोछे से पानी पोंछा और अबकी बार पलंग को घसीटकर कमरे के बीच में कर दिया। पर यह क्या! अजब मुसीबत है! यहां भी वही हाल! पानी ठीक पेट पर उसी जगह टप-टप गिरने लगा। अब क्या करें? कहां सोएं? कमरे में कोई भी जगह ऐसी नहीं जहां ऊपर से पानी न टपकता हो। बिछौना भी काफी भीग गया है। भीगे बिस्तर भी सोना संभव नहीं था।

स्मृतिरत्न बड़े चक्कर में पड़े। बूढ़ा भारी-भरकम शरीर और नई अनजानी जगह! दरवाजा खोलकर बाहर जाने में भी अजीब-सा लगता है। पर फटी छत-वाले इस कमरे में रहना भी तो खतरे से खाली नहीं। कौन जाने, फटी हुई छत कहीं अचानक सिर पर ही न गिर पड़े! आखिर डरते-सहमते उन्होंने दरवाजा खोला और बरामदे में निकल आए। वहां एक मद्धम-सी लालटेन जल रही थी, पर आदमी

कोई न था। काले बादलों ने रात को और भी काला बना दिया था। बड़ा घना अंधेरा था। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। आंधी-पानी थमने का नाम नहीं ले रहे थे। क्या करें? कहां जाएं? उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। किसी नौकर-चाकर को जगाना चाहते थे पर उन्हें क्या मालूम कि वे किधर सोते हैं! दो-चार बार जोर से पुकारा भी पर वर्षा और आंधी के शोर-शराबे में उनकी आवाज खो गई और किसीने नहीं सुनी। एक तरफ वकील साहब के गरीब मुवक्किलों के बैठने की बेंच पड़ी हुई थी। लाचार होकर स्मृतिरत्न उसी पर जा बैठे। इस गई-बीती बेंच पर बैठने से उनके आत्म सम्मान को धक्का तो लगा, पर और चारा भी क्या था। नमदार उत्तरी हवा के झोंके आकर स्मृतिरत्न जी को भिगोने लगे। मारे ठंड के उनके रोएं खड़े हो गए। उन्होंने आधी धोती खोलकर सने शरीर को ढांपने का व्यर्थ प्रयत्न किया। दोनों टांगों को समेटकर वे उकड़ूं बैठ गए ताकि ठंड से कुछ बचाव हो सके।

दिनभर की यात्रा की थकान होने पर भी नींद

और आराम में रुकावट पड़ने से देह दुखने लगी थी और मन खीझ उठा था। आंखें नींद से बोझिल थीं किन्तु सोने का कोई उपाय नहीं था। नन्दरानी के हाथ के बने बढ़िया-बढ़िया पकवान आज स्मृतिरत्न ने कुछ अधिक ही खा लिए थे जिससे पेट तना हुआ

था और नींद न आने से अपच के खट्टे डकार आने लगे थे। अब तो स्मृतिरत्न खूब घबराए। प्रवास में बीमार पड़ गए तो बुढ़ापे में मिट्टी खराब होगी।

इस समय एक नई मुसीबत सिर पर आ धमकी। पश्चिम के बड़े-बड़े मच्छरों का हवाई हमला शुरू हो गया। कुछ मच्छर कान के पास गुनगुनाने लगे तो कुछ काटने लगे। अधमुंदी पलकों से स्मृतिरत्न मच्छरों की फौज का अनुमान लगाने का प्रयत्न करने लगे। पर उन्हें कुछ ही क्षणों बाद इस बात का पता चल गया कि खून के प्यासे ये शत्रु अनगिनत हैं और संसार-भर में एक भी ऐसा बहादुर नहीं है जो इस मच्छर-सेना का सामना कर सके। अब क्या था, मच्छरों के काटने से होनेवाली खुजलाहट और जलन से स्मृतिरत्न जी बेहाल हो गए। युद्ध के इस मोर्चे से स्मृतिरत्न जी भाग खड़े हुए, पर शत्रुओं ने फिर भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। सब जगह और हर घड़ी मुसीबत उनका पीछा कर रही थी। कमरे के भीतर पानी टपकने के कारण जैसे ठहरना कठिन था, वैसे ही बाहर भी मच्छरों के मारे

बैठना असंभव था। गुरुजी इधर-से-उधर और उधर से इधर भागकर बचने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगे। वे अंगोछा फटकार-फटकारकर मच्छरों को दूर हटाने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु मच्छरों के हमले में कोई कमी नहीं हो रही थी। इसके विपरीत देह खुजलाते गुरुजी का बुरा हाल था। कुछ देर पहले उन्हें ठंड लगने लगी थी किन्तु अब माथे पर पसीने की बूंदें उभर आई थीं। उनका जी करता था कि जोर से चिल्ला पड़ें पर यही सोचकर चुप रह जाते कि कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा!

उन्होंने मन-ही-मन कल्पना की—मेरी शिष्या नन्दरानी मुलायम बिछौने पर मसहरी ताने मज़े में सो रही है। घर के दूसरे लोग सुख-चैन में सोए हुए हैं, लेकिन एक वे अभागे हैं कि सारी रात दौड़-धूप में बीत चली और आराम की नींद सो नहीं सके।

रात के चार बजने को हुए। पास कहीं मुर्गे ने कुकड़ूं कूं की जोरदार बांग लगाई। अभी तक अपनी मुसीबत का अन्त होते न देखकर स्मृतिरत्न

अपने शत्रुओं को सम्बोधित करते हुए बोले, "काटो सालो, जितना काट सकते हो, काटो। मुझसे तो अब कुछ होने का नहीं।" यह कहकर बरामदे के एक कोने में, यथासंभव पीठ को दीवार से सटाकर ताकि मच्छरों से जान बचे, धरती पर ही बैठ गए। वे बुदबुदाए, "सवेरे तक अगर जीता रहा तो इस अभागे देश में जरा भी नहीं ठहरूंगा, पहली ही गाड़ी से घर चल दूंगा। अब समझ में आया कि इस ओर आने को मेरा जी क्यों नहीं चाहता!"

थोड़ी देर में उन्हें नींद आ गई और उस रात के उनके दुखों का अन्त हो गया। स्मृतिरत्न खूब गहरी नींद में डूब गए।

उधर नन्दरानी बड़े तड़के ही उठ खड़ी हुईं, क्योंकि गुरुदेव की सेवा में जुट जाना था। उन्होंने सोचा, रात को गुरुदेव ने अल्पाहार ही किया था। यह बात उन्होंने अपनी श्रद्धा-भक्ति के कारण ही सोची थी नहीं तो वास्तविकता यह है कि गुरुजी दो आदमियों का भोजन चट कर गए थे। नन्दरानी कल की कसर आज पूरी कर देना चाहती

थीं और आज उन्हें छकाकर बढ़िया-बढ़िया पकवान खिलाना चाहती थीं।

वह नीचे उतरकर आईं तो देखा कि गुरुदेव के कमरे का दरवाजा खुला है। गुरुदेव उससे पहले ही उठ गए हैं—यह सोचकर वह बेचारी लज्जित हुई। सकुचाकर उन्होंने कमरे के भीतर झांककर देखा तो गुरुजी भीतर नहीं थे। किन्तु यह देखकर वह विस्मित रह गई कि पलंग दक्खिन की ओर बिछाया था और इस समय वह उत्तर की ओर है। गुरुजी के सामान का थैला खिड़की के ऊपर से फर्श पर नीचे उतर आया है। संध्या-पूजा की सामग्री भी जहां रखी थी वहां नहीं है और अस्त-व्यस्त पड़ी है—यह मामला उनकी समझ में नहीं आता था।

नन्दरानी ने बाहर आकर नौकरों को पुकारा। किसीने नहीं सुना। वे अभी सोए पड़े थे। बेचारी हैरान-परेशान कि आखिर गुरुजी अकेले कहां गए? इतने में उनकी नजर बरामदे में एक ओर पड़ी और आश्चर्य से उनके मुंह से निकला, "यह

क्या ! एक कोने में, अन्धेरी जगह में वह आदमी-जैसा कौन बैठा है ? वह हिम्मत करके वहां गई तो क्या देखती है कि वे तो उनके गुरुजी ही हैं। वह घबराकर चिल्ला उठी, "गुरुजी ! गुरुजी !!"

कच्ची नींद टूटने पर स्मृतिरत्न जी ने आंखें खोलकर देखा, फिर धीरे-धीरे उनकी सिमटी देह की गठरी खुलने लगी और वे सीधे होकर बैठ गए।

नन्दरानी ने कुछ भय, कुछ चिन्ता और कुछ संकोच के साथ रुआंसी-सी होकर पूछा, "गुरुजी ! आप यहां क्यों बैठे हैं ?"

स्मृतिरत्न उठ खड़े हुए और बोले, "बिटिया ! क्या बताऊं ! रात-भर मेरे दुखों का ठिकाना नहीं रहा।"

नन्दरानी ने पूछा, "क्या हुआ गुरुजी ?"

स्मृतिरत्न खिन्न से बोले, "बेटी, नया मकान तो तुमने जरूर बनवाया परन्तु उसकी छत तो कहीं से भी साबुत नहीं है। रातभर जो पानी बर्षा, वह सब भीतर मेरे ऊपर टपकता रहा। कहीं ऐसा न हो कि छत गिर पड़े और मैं नीचे दब जाऊं, इसी भय से

बाहर भाग आया। किन्तु इतना करने पर भी जान नहीं बची। झुण्ड-के-झुण्ड मच्छर मेरे ऊपर टूट पड़े और काटते-खाते रहे। विवश मैं अपना-आप बचाने के लिए इधर से उधर दौड़ता रहा। जान पड़ता है कि आज रात शरीर का आधा खून तो जरूर चूस गए होंगे।"

कितनी बार कहने-सुनने, चिट्ठी-पत्री के बाद तो कहीं गुरुजी ने यहां आना स्वीकार किया था, तिस पर अपने घर में अपने गुरुदेव की यह कष्ट-कथा सुनकर और देखकर नन्दरानी की आंखों में आंसू छलछला आए और वे संकोच वश धरती में गड़-सी गईं।

फिर कुछ सोचकर वे बोलीं, "गुरुजी, छत से पानी गिर कैसे सकता है ? इसके ऊपर खुली छत तो है नहीं, कमरा है और उसके ऊपर फिर कमरा है। वर्षा का पानी तीन-तीन छतों को तोड़कर आपके ऊपर कैसे गिर सकता है ? किन्तु....."

कहते-कहते अचानक उन्हें ध्यान आया कि संभवतः यह उसी शैतान लल्लू की कोई शरारत

होगी। वह दौड़कर भीतर गईं और बिस्तर को देखा तो वह काफी भीगा हुआ था और मसहरी के भीतर अब भी पानी की बूंदें टपक रही थीं। वह चटपट मसहरी उतारने लगीं तो दीख पड़ा कि कपड़े में लिपटा बर्फ का एक ढेला ऊपर रखा है। नन्दरानी को अब सब-कुछ समझते देर नहीं लगी।

वह गुस्से में दौड़कर बाहर निकलीं और चिल्ला-चिल्लाकर नौकरों को पुकारने लगीं। जो भी नौकर सामने आता, उसी से पूछतीं कि लल्लुआ कहां है? जब सभी ने कहा कि उन्हें कुछ पता नहीं तो बोलीं कि सब काम-काज छोड़कर पहले उस बदमाश को पकड़कर मारते-पीटते मेरे पास लाओ।

लल्लू के पिता उसी समय सीढ़ियां उतर रहे थे, पत्नी को इस तरह सुबह-सुबह बिगड़ते देख भौचक्क रह गए और बोले, "क्या बात है? क्या हुआ है? क्यों चिल्ला रही हो?"

नन्दरानी ने रोते-रोते कहा, "या तो इस शैतान लल्लुआ को घर से खदेड़ो नहीं तो मैं आज गंगा में डूबकर इस पाप का प्रायश्चित्त करूंगी।"

लल्लुआ के पिता ने पूछा, "कुछ बताओ भी तो कि उसने किया क्या है?"

नन्दरानी बोलीं, "बिना बात के उसने गुरुदेव की क्या हालत कर डाली है, जरा चलकर अपनी आंखों देख लो।"

सभी कमरे के भीतर गए तो नन्दरानी ने उसकी करतूत—वह बर्फ का ढेला दिखाया और रातभर गुरुजी पर जो बीती थी, वह कह सुनाई। फिर बोलीं, "अब तुम्हीं बताओ, इस पाजी लड़के के साथ इस घर में कैसे गुजारा हो सकता है?"

गुरुदेव सब समझ गए। फिर तो अपनी मूर्खता पर वे आप ही 'हो-हो' करके जोर से हंस पड़े।

लल्लुआ के पिता दूसरी ओर मुंह फेरकर खड़े रहे। संभवतः उन्हें भी हंसी आ रही थी।

नौकरों ने सारी कोठी में लल्लुआ को खोजने के बाद आकर बताया कि छोटे बाबू कोठी में नहीं हैं।

तभी एक नौकर ने आकर बताया कि वह मौसी के घर में हैं और मिठाई खा रहे हैं। मौसी ने उन्हें आने नहीं दिया।

ये मौसी नन्दरानी की छोटी बहन हैं और पड़ोस में ही रहती हैं। उनके पति भी वकील हैं।

इसके बाद कोई पन्द्रह दिन तक लल्लू ने अपने घर की चौखट पर पैर नहीं रखा।

२. लल्लू की करतूत

लल्लू उसका प्यार का नाम था। उसका अच्छा-सा एक नाम और था जरूर, किन्तु मुझे याद नहीं है। सम्भवतः आप जानते होंगे लाल शब्द का एक अर्थ प्यारा भी है। लाल से लालू और लालू से लल्लू बन गया था। न जाने उसका यह नाम किसने रखा था! शायद माता-पिता ने या दादा-दादी ने, किन्तु यह सच है कि वह सबको प्यारा था, घर-वालों को भी और मित्रों को भी। जैसा नाम था, वैसा ही गुण भी था।

स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके हम लोग कालेज में पढ़ने लगे। वह स्कूल में मेरा सहपाठी था। लल्लू ने घरवालों से कहा, "मैं आगे नहीं पढ़ूंगा, कुछ काम करूंगा।"

पढ़ना छोड़कर और मां से कुछ रुपये लेकर उसने ठेकेदारी शुरू कर दी। हम साथियों ने उसे कहा, "तुम्हारी पूंजी तो बहुत थोड़ी है। इतनी कम पूंजी से काम कैसे चलेगा?"

उसने हंसकर कहा, "इतनी ही बहुत है। और अधिक की क्या जरूरत है!"

उसे काम मिल गया। इसके बाद कालेज जाते समय प्रायः उससे भेंट हो जाती। मैं देखता कि लल्लू सिर पर छाता ताने मजदूरों से सड़क मरम्मत का छोटा-मोटा काम करा रहा होता। हम पुराने सहपाठियों को कालेज जाते देखकर वह हमारा मजाक उड़ाते हुए कहता, "अरे जल्दी-जल्दी जाओ, नहीं तो रजिस्टर में गैरहाजिरी लग जाएगी।"

हम लोग जब और छोटे थे, मिडल स्कूल में पढ़ते थे, तब वह हम सब हमजोलियों का मिस्त्री था। उसके बस्ते में एक टूटा चाकू, एक मुंगरी, एक नुकीली-सी कील और एक घोड़े की नाल—ये चीजें पड़ी रहतीं। न जाने कहां से यह सब सामान उसने इकट्ठा कर रखा था। बस, ले-देकर

यही उसके औजार थे और वह इन्हीं से सब तरह का काम कर लेता था। स्कूल-भर के लड़कों के टूटे छातों की मरम्मत करना, स्लेट की चौखट जड़ना, खेल में फटे हुए कपड़े सी देना, ऐसे-वैसे कितने ही काम वह कर देता था। वह कभी किसी काम के लिए 'न' नहीं करता था और काम भी बड़ी सफाई के साथ करता था।

एक बार कोई त्यौहार का पर्व था। लल्लू कुछ पैसों का रंग-बिरंगा पतला कागज खरीद लाया और उसने एक खिलौना बना डाला। उन खिलौनों को बेचकर उसने ढाई रुपए खड़े कर लिए। अपनी इस कमाई में से उसने हमें भी भरपेट भुनी हुई मूंगफलियां खिलाई थीं।

समय बीतता गया। हम सब कुछ सयाने हुए। जिमनास्टिक की कसरत में लल्लू ने कमाल कर दिया। कोई दूसरा उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। वह जैसा शरीर से तगड़ा था, वैसा ही साहसी भी था। डर किसे कहते हैं, यह तो शायद वह जानता भी न था। सभी की सहायता करने के

लिए लल्लू तैयार रहता। दुःख-संकट में साथ देने के लिए वह सबसे आगे खड़ा दिखाई देता।

बस, उसमें एक ही बहुत बड़ा दोष था। किसी-को डराने का मौका मिलते ही वह अपने-आपको रोक नहीं पाता था। इस मामले में छोटे-बड़े सब उसके लिए बराबर थे।

दूसरों को डराने, परेशान करने की एक-से-एक नई तरकीब उसके दिमाग में पैदा होती रहती थी। अवसर मिलने पर पलभर में ही वह दूसरों को डराने की योजना बना लेता था। दो-एक ऐसी घटनाएं सुनिए—

मुहल्ले में मनोहर चटर्जी के घर में महाकाली की पूजा थी। आधी रात को बकरे की बलि दी जाती थी। ऐन मौके पर पता लगा कि जिसे बकरा काटने के लिए कहा था, वह नहीं है। उस घर पर आदमी दौड़ाया गया तो पता लगा कि वह पेट के दर्द से तड़प रहा है।

उन लोगों ने जब लौटकर बताया तो सब लोग सिर पर हाथ रखकर बैठ गए। अब क्या किया

जाए इतनी रात को दूसरा बकरा काटनेवाला कहां मिलेगा ? यह तो बड़ा अनर्थ हुआ ! महाकाली की पूजा बलिदान के बिना अधूरी रह जाएगी और यह बात बड़ी अशुभ मानी जाती है।

इतने में एक आदमी बोल पड़ा, "लल्लू को बुला लाओ तो वह इस काम को कर सकता है। उसके हाथ में इतनी ताकत और कौशल है कि वह एक ही झटके से बकरे का सिर काट सके। अनेक बकरे वह इस तरह काट चुका है।"

बलि का समय टला जा रहा था। लल्लू को बुलाने के लिए लोग दौड़ाए गए। लल्लू को सोते से जगाया गया। लल्लू उठ बैठा और सुनकर बोला, "नहीं, मुझसे यह काम नहीं होगा।"

लोग मिन्नत के स्वर में बोले, "ऐसे मौके पर 'नहीं' मत करो। मां काली की पूजा में विघ्न पड़ेगा तो सबका अशुभ होगा। सब पर काली का कोप होगा।"

लल्लू ने कहा, "जो होना हो, सो हो। मैं यह काम नहीं करूंगा। बचपन में कभी किया करता था, अब छोड़ चुका हूं।"

जो बुलाने गए थे वे विघ्न के भय से सिर पीटने लगे। पूजा का मुहूर्त निकला जा रहा था। बस, यही कोई दस-पन्द्रह मिनट शेष थे।

लल्लू के पिता भी जग गए थे। उन्हें पता लगा तो लल्लू को आज्ञा के स्वर में बोले, "वे लोग लाचार-विवश होकर ही तुम्हारे पास आए हैं। नहीं जाना ठीक नहीं होगा। तुम जाओ।"

पिता की आज्ञा को टालना लल्लू के बूते के बाहर की बात थी।

लल्लू को आता देखकर चटर्जी महाशय की चिन्ता दूर हुई। समय अधिक नहीं था। झटपट बकरे को पकड़कर उसके माथे पर सिन्दूर लगाया गया, गले में लाल फूलों की माला पहनाई गई। इसके बाद उसका गला बलिदान की काठी के भीतर रखा गया। घर-भर के लोग ज़ोर से 'मां, मां' पुकारकर अपनी भक्ति का प्रदर्शन करने लगे। भक्तों के उस कोलाहल में, उस बेचारे विवश जीव का करुण मिमियाना किसीने नहीं सुना। लल्लू के हाथ का खांडा पलभर में ऊपर उठा और पूरे

जोर से बकरे के सिर पर पड़ा। बकरे का सिर

अलग जा पड़ा और रक्त की धार बहने लगी जिससे

वहां की धरती लाल हो गई। लल्लू क्षणभर अपनी आंखें मूंदे रहा।

धीरे-धीरे ढोल-नगाड़े और शंख-घड़ियाल का शब्द धीमा पड़ा। अब पास खड़े दूसरे बकरे के माथे पर सिन्दूर लगाकर, गले में फूलमाला पहनाई गई। फिर उसी काठी पर उसकी गर्दन रखी गई। वह बेचारा भी करुणापूर्ण ढंग से मिमियाने लगा, जैसे भक्तों से अपने प्राणों की भीख मांग रहा हो। उधर यजमान-परिवार भक्तिभाव से गद्-गद होकर, 'मां, मां' पुकारने लगा। फिर लल्लू के हाथ से वह रक्त से लथपथ खांडा पलक झपकते ही उठा और बकरे की गर्दन पर गिरा। बकरे का सिर अलग जा पड़ा और धड़ कुछ देर तक छटपटाता रहा और फिर निश्चल हो गया। रक्त की धारा ने आस-पास की जमीन को और भी गहरा लाल रंग दिया।

बाजे बजानेवाले बेतहाशा ढोल-नगाड़े और घड़ियाल पीट रहे थे। आंगन में लोगों की भीड़ जुटी हुई थी और कोलाहल मचा हुआ था। सामने

के बरामदे में ऊनी आसन पर पद्मासन में बैठे हुए मनोहर चटर्जी आंखें मूंदकर अपने इष्टदेव का मंत्र जप रहे थे। एकाएक लल्लू भयंकर हुंकार कर उठा। सारा शोर-गुल थम गया। सब लोग विस्मय से सन्न रह गए। यह क्या! लल्लू की आश्चर्यकारी ढंग से फैली हुई आंखों की पुतलियां इधर-उधर घूम रही थीं। उसने गर्जकर कहा, "और बकरा कहां है?"

घर के किसी आदमी ने डरते-डरते उत्तर दिया, "और बकरा तो नहीं है। हमारे यहां केवल दो बलियां दी जाती हैं?"

लल्लू अपने हाथ के खून से लथपथ खांडे को सिर के ऊपर दो-तीन बार घुमाकर गर्ज उठा—'बकरा नहीं है? यह नहीं होगा! मेरे सिर पर खून सवार है। बकरा लाओ, नहीं तो मैं आज जिसे सामने पाऊंगा उसीको पकड़कर मां को मनुष्य की बलि दूंगा।

इसके बाद 'मां, मां, जय महाकाली' कहकर और छलांग मारकर, उछलकर वह बलि की काठी

के इस छोर से उस छोर पर जा पहुंचा। हाथ के खांडे को वह अब भी सिर के ऊपर घुमा रहा था।

उस समय जो कुछ हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एकदम भगदड़ मच गई। सभी एक साथ दरवाजे की ओर भागे, जिससे धक्का-मुक्की शुरू हो गई। क्या मालूम लल्लू किसको बलिदान के लिए पकड़ ले! ऐसी रेल-पेल और भगदड़ मची जैसी कभी दक्ष-यज्ञ में शिवगणों के विध्वंस करने से मची थी। कोई गिर पड़ा तो बदहवास लोग उसे कुचलते हुए ऊपर से निकल गए। गिरने से किसीके अगले दांत टूट गए तो किसीके घुटने छिल गए और किसीके पैर में मोच आ गई। बस, मिनट-दो-मिनट में ही यह सब हो गया और उसके बाद सारा आंगन खाली हो गया।

लल्लू गर्ज उठा, "मनोहर चटर्जी कहां है? पुरोहित कहां गया?"

पुरोहित महाशय रोगी शरीर के थे। इस गड़बड़ में मौका पाकर पहले ही देवी की प्रतिमा के पीछे जाकर छिप गए थे। चटर्जी महाशय के गुरुदेव कुशा

के आसन पर बैठे 'दुर्गासप्तशती' का पाठ कर रहे थे। वह चटपट उठकर मन्दिर के दालान में एक मोटे खम्भे की आड़ में जाकर छिप गए। किन्तु मनोहर बाबू बहुत मोटे थे, इसलिए उनके लिए भाग सकना कठिन था। लल्लू ने आगे बढ़कर बाएं हाथ से उनका एक हाथ कसकर पकड़ लिया और कड़ककर बोला, "चलो, बलि की काठी पर अपना गला रखो।"

एक तो लल्लू की जम्बूर की तरह कसी हुई मुट्ठी, उसपर उसके दाहिने हाथ में लहू से लथपथ खाडा! डर के मारे चटर्जी के तो प्राण सूख गए। भय से उनकी घिग्घी बंध गई थी। किसी तरह रिरियाते-गिड़गिड़ाते हुए बोले, "लल्लू बेटा! शान्त होकर देखो, मैं बकरा नहीं हूं, आदमी हूं। मैं रिश्ते में तुम्हारा ताऊ लगता हूं। भया, तुम्हारे पिता मेरे छोटे भाई की तरह हैं।

लल्लू ने धमकाने के स्वर में कहा, "मैं कुछ नहीं जानता। मेरे सिर पर खून सवार है। चलो, मैं तुम्हारी बलि चढ़ाऊंगा। मां की आज्ञा है।"

अब तो चटर्जी महाशय रो पड़े, "ना बेटा! मां की आज्ञा नहीं है, कभी नहीं है। माता तो जगत्-जननी है, सबकी माता है।

लल्लू ने कहा, "जगत् की माता है! यह ज्ञान तुम्हें है? और बकरा बलि चढ़ाओगे? फिर मुझे बकरा काटने के लिए बुलाओगे? बोलो?"

चटर्जी ने रोते-रोते कहा, "कभी नहीं भैया, अब कभी बलि नहीं दूंगा। मैं माता के आगे तीन बार कहकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से मेरे घर में बलिदान नहीं होगा।"

लल्लू ने कहा, "ठीक कहते हो न?"

चटर्जी बोले, "ठीक कहता हूं, बिल्कुल ठीक। अब कभी नहीं। मेरा हाथ छोड़ दो बेटा, मैं गीच जाऊंगा।"

लल्लू ने हाथ छोड़कर कहा, "जाओ तुम्हें छोड़े देता हूं। किन्तु पुरोहित किधर गया? और गुरुदेव? वह कहां हैं?"

यह कहकर, वह फिर एक बार गर्जकर और छलांग मारकर मन्दिर के दालान की ओर जैसे ही

आगे बढ़ा, वैसे ही प्रतिमा के पीछे से और खम्भे की ओट से दो भिन्न-भिन्न कण्ठों की भय से त्रस्त रोने की आवाजें सुनाई दीं। महीन और मोटे गले के वे दोनों शब्द ऐसा विचित्र और हंसानेवाले थे कि लल्लू अपने को संभाल न सका। उसने जोर से ठठाकर हंसते हुए अपने हाथ का खण्डा एक ओर फेंक दिया और यह जा, वह जा।

तब किसीको यह समझते देर नहीं लगी कि खून सवार होने की बात एकदम झूठी थी—सब उसकी चालाकी थी। लल्लू जान-बूझकर इतनी देर तक सबको डरा रहा था। थोड़ी देर में ही सब भागे हुए लोग फिर आकर जमा हो गए।

मां काली की पूजा अभी होने को थी। उसमें बहुत विघ्न पड़ गया था। लोगों के कोलाहल के बीच चटर्जी महाशय सबको सुनाकर बार-बार घोषणा करने लगे कि इस शैतान लौंडे को कल सवेरे ही उसके बाप से पचास जूते न लगवाऊं तो मेरा नाम भी मनोहर चटर्जी नहीं।

किन्तु लल्लू को जूते नहीं खाने पड़े। वह तड़के

उठकर कहीं भाग गया। सात-आठ दिन तक उसका कहीं कुछ पता नहीं चला। सात दिन के बाद एक दिन अंधेरा होने पर मनोहर चटर्जी के घर आकर और उनके पैर छूकर उसने क्षमा मांगी। इस बार लल्लू ने पिता के क्रोध से किसी तरह छुटकारा पाया। किन्तु जो भी हो, मां काली के सामने प्रतिज्ञा करने के कारण मनोहर चटर्जी के यहां काली की पूजा में तब से बकरे की बलि बन्द हो गई।

३. निडर लल्लू

हमारे शहर में उन दिनों जाड़ा पड़ने लगा था। दुर्भाग्य से उन्हीं दिनों महामारी के रूप में हैजा फैल गया। उन दिनों हैजे के नाम से लोग थर्रा उठते थे। अगर किसी मुहल्ले में किसी को हैजा हो जाता था तो पता लगते ही लोग वहां से घर छोड़कर भागने लगते। हैजे का रोगी मर जाता तो उसे श्मशान तक ले-जाने के लिए आदमियों का मिलना कठिन हो जाता।

ऐसे बुरे दिनों में भी, हमारे यहां एक आदमी

ऐसा था जो सहायता करने के लिए सबसे आगे रहता। मुर्दा उठाने और जलाने में उसका उत्साह देखते योग्य था। उनका नाम था—गोपाल चाचा। मुर्दा उठाना और जलाना जैसे उनके जीवन का पवित्र कर्तव्य था। वे मानते थे कि मुर्दा जलाना बड़े पुण्य का काम है।

पास-पड़ोस में किसीको कोई असाध्य बीमारी होती तो वह रोज डॉक्टर के घर जाकर उसके बारे में पूछताछ करते रहते। जब उन्हें पता लगता कि अब रोगी के बचने की कोई आशा नहीं है, डॉक्टर वैद्य ने जवाब दे दिया है तो घंटा-दो-घंटा पहले ही नंगे पैर कंधे पर अंगोछा डाले रोगी के घर पहुंच जाते। हम कई तरुण और किशोर उनके चेले थे। वे गंभीर चेहरा बनाकर मुहल्ले का चक्कर काटते हुए हम लोगों को पुकारते हुए कहते जाते, "अरे सुनते हो? आज रात को जरा होश्यार रहना, बुलाऊं तो झट उठ खड़े होना! जानते ही न, शास्त्र में क्या लिखा है: राजद्वारे श्मशाने च···"

हमलोग कहते, "हां चाचा, सब याद है। बस,

आपके आवाज देने-भर की देर है। हम तुरंत (अंगोछा) लेकर निकल पड़ेंगे।"

गोपाल चाचा कहते, "ठीक, यही तो होना चाहिए। इससे बढ़कर पुण्य का दूसरा काम संसार में नहीं है।"

हम किशोरों की टोली में ललू भी था। ललू को तो आप जानते ही हैं। यदि वह ठेकेदारी के काम से कहीं बाहर न गया होता तो ऐसे काम के लिए कभी 'ना' नहीं करता था।

उस दिन शाम को उदास मुंह से गोपाल चाचा ने आकर कहा, "विष्णू पंडित को स्त्री जान पड़ता है, आज नहीं बचेगी।"

सुनकर हम लोग चौंक पड़े। विष्णू पंडित बहुत गरीब थे। प्राथमिक पाठशाला में हम उनसे पढ़े थे। वे स्वयं भी सदा के रोगी थे और पत्नी की सेवा और सहारे से दिन काट रहे थे। पत्नी के सिवा संसार में अपना कहने के लिए उनका कोई नहीं था। बेचारे विष्णू पंडित जैसा एकदम निरीह, असहाय और निरुपाय आदमी दूसरा कोई नहीं था।

रात के लगभग आठ बजे होंगे। हम लोग पंडिताइन को बिछौने समेत खाट पर से घर से आंगन में ले आए। बेचारे विष्णु पंडित आंखें फाड़े हमारी ओर देख रहे थे। संसार की किसी भी चीज के साथ उनकी उस करुण-विवश दृष्टि की तुलना नहीं की जा सकती। वह दृष्टि ऐसी थी जो एक बार देख लेने पर उम्र-भर भुलाई नहीं जा सकती।

हमारे लाश उठाते समय पंडितजी ने धीरे से कहा, "मैं नहीं जाऊंगा तो चिता में आग कौन देगा ?"

किसीके कुछ कहने के पहले ही लल्लू बोल पड़ा, "यह काम मैं करूंगा पंडितजी ! आप हम लोगों के पिता बराबर हैं और इस नाते पंडिताइन हमारी माता-तुल्य हैं।"

हम जानते थे कि श्मशान तक पंडितजी के लिए पैदल चलना कठिन ही नहीं, असंभव है। हमारे स्कूल का उनके घर से पांच मिनट का रास्ता था, पर उतनी दूर जाते में पंडितजी हांफ जाते और सुस्ताते हुए आध घंटे में पहुंचते थे।

पंडितजी जरा देर तक चुप रहकर बोले, "ले जाते समय उनकी मांग में जरा-सा सिंदूर न भर दोगे लल्लू ?"

"जरूर लगाऊंगा पंडितजी जरूर लगाऊंगा।" कहकर लल्लू एक छलांग में घर के भीतर जाकर सिंदूर की डिबिया ढूंढ लाया और उसमें जितना सिन्दूर था, सब पंडिताइन की मांग में उंडेल दिया।"

"राम नाम सत्य है" कहते हुए हम लोग पंडिताइन के शव को सदा के लिए आंगन से बाहर ले आए। पंडितजी खुले दरवाजे की चौखट को पकड़े चुपचाप खड़े रहे।

गंगा के किनारे का श्मशान वहां से दो-तीन कोस दूर होगा। वहां पहुंचकर हमने जब शव को कंधों से उतारकर रखा तब रात के लगभग दो बजने को थे। लल्लू अर्थी का सहारा लिये दोनों पैर पसारकर बैठ गया।

कुछ दूसरे मकान से चूर-चूर होने के कारण इधर-उधर लेट गए। शुक्लपक्ष की द्वादशी के चन्द्रमा की चांदनी में श्मशान, और दूर तक फैली हुई नदी-तट की बालू चमक रही थी। आधी रात, नदी का किनारा और श्मशान···एकदम सन्नाटा छाया हुआ था।

गंगा के उस पार उत्तर से आती ठंडी हवा के थपेड़ों से गंगा में तरंगें उठ रही थीं। कभी कोई बड़ी लहर आती तो पसरे हुए लल्ला के पैरों को छू जाती।

चिता के लिए लकड़ी शहर से आती है। कौन जाने बैलगाड़ीवाला लकड़ी लेकर कब यहां पहुंचेगा! कोई मील-भर दूर रास्ते में डोमों के घर हैं। आते समय हम उन्हें आवाज़ लगा आए थे,

पर वे भी अभी तक नहीं पहुंचे थे।

सहसा, गंगा के उस पार के दिगन्त से एक गहर बादल ऊपर उठता दिखाई दिया और ज़ोर-दार उत्तरी हवा के कारण वह तेज़ी के साथ फैलता हुआ, आगे हमारी ओर को बढ़ने लगा। गोपाल चाचा ने उधर सशंक आंखों से देखते हुए डरकर कहा, "अरे लड़को! आकाश के लक्षण ठीक नहीं दिखाई देते। लगता है अभी जोरदार बूंदें पड़ने लगेंगी। जाड़े की ऋतु में पानी में भीगे तो जान पर बन आएगी, निमोनिया हो जाएगा।"

पास सिर छिपाने लायक कहीं कोई जगह थी नहीं। कोई बड़ा घना वृक्ष तक नहीं था। कुछ दूरी पर ठाकुरबाड़ी के आम के बाग में माली की एक झोंपड़ी ज़रूर थी, किन्तु उतनी दूर तक दौड़कर जाना आसान नहीं था।

देखते-देखते आकाश में घोर घटा छा गई। चांदनी अंधकार में डूब गई। गंगा के उस पार पानी पड़ने लगा था और हमारी ओर को बढ़ता आ रहा था। पानी की पहली बूंदें तीर की तरह

आकर हम लोगों के ऊपर पड़ीं।

हम कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें! इतने में मूसलाधार पानी पड़ने लगा। पंडिताइन का शव जहां-का-तहां पड़ा रहा और भीगने से बचने के लिए जिसका जिधर जी किया, उधर ही भाग खड़ा हुआ। कौन किधर गया, किसीको कुछ पता नहीं लगा।

घंटे-भर बाद जब पानी बरसना थम गया और बादल छट गए तो एक-एक करके हम सभी वापस श्मशान पर लौट आए। फिर से उज्ज्वल चांदनी चारों ओर छिटकने लगी।

इसी बीच लकड़ी से लदी बैलगाड़ी भी आ पहुंची। गाड़ीवान लकड़ी और दाहसंस्कार का दूसरा सामान उतारकर वापस लौटने की तैयारी करने लगा। लेकिन डोम अभी तक नहीं आए थे। उनके बिना चिता कौन बनाए?

गोपाल चाचा देरी होते देखकर क्षोभ के साथ बोले, "ये डोम साले बड़े पाजी हैं। जाड़े की रात में घर से निकलने का नाम नहीं लेते।"

इतने में इधर-उधर सबपर नज़र दौड़ाने के बाद मणी ने कहा, "लल्लू कहां गया? सब तो लौट आए, वही नहीं दिखाई पड़ता। वह तो पंडितजी से चिता को आग देने के लिए वादा कर आया था। डर के मारे कहीं घर तो नहीं भाग गया?"

गोपाल चाचा लल्लू पर नाराज़ होने लगे। बोले, "वह ऐसा ही है। अगर इतना डरता था तो लाश से लगकर बैठा ही क्यों था? मैं होता तो चाहे सिर के पास बाज गिर पड़ती, तो भी मुर्दे को छोड़कर कहीं न जाता।"

मणि ने पूछा, "चाचा, मुर्दे को छोड़कर जाने से क्या होता है?"

गोपाल चाचा ने उत्तर दिया, "क्या होता है, क्या बताऊं? अरे न जाने क्या-क्या होता है! यह श्मशान है श्मशान! भूतों का डेरा! कुछ समझे?"

मणि ने बात बढ़ाते हुए कहा, "चाचा, श्मशान में अकेले बैठे रहने में क्या आपको डर नहीं लगता?"

गोपाल चाचा गर्व से बोले, "डर? मुझे? अरे,

तू अपने गोपाल चाचा को क्या समझता है! मैंने कम-से-कम एक हजार मुर्दे श्मशान में पहुंचाए और जलाए होंगे।"

इस पर मणि चुप हो रहा। सचमुच इस काम के लिए चाचा का गर्व करना ठीक ही था।

श्मशान में दो कुदालें पड़ी थीं। गोपाल चाचा ने एक कुदाल अपने हाथ में लेकर कहा, "साले डोमों की राह देखते रहने से काम नहीं चलेगा। मैं गड्ढा खोदता हूं, तुम लोग हाथों-हाथ लकड़ियां वहां तक ढोकर ले आओ।"

गोपाल चाचा चिता के लिए गड्ढा खोदने लगे और हम वहां तक लकड़ियां ढोकर पहुंचाने लगे।

नरेन्द्र ने मुर्दे की ओर देखकर कहा, "अरे देखो तो सही, मुर्दा फूलकर दूना हो गया है! है न?"

चाचा ने बिना ऊपर देखे कुदाल चलाते-चलाते कहा, "फूलेगा नहीं? ऊपर का लिहाफ, नीचे की कथरी, सभी तो वर्षा में भीग गए हैं।"

नरेन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ। बोला, 'किन्तु रुई तो भीगने पर सिमटकर बैठ जाती है चाचा, फूलती तो नहीं?"

इस तर्क से गोपाल चाचा चिढ़ गए। बोले, "तू बड़ा समझदार है न! जा अपना काम कर!"

पर नरेन्द्र की नजर अर्थी पर ही टिकी हुई थी। एकाएक वह ठिठककर बोला, "चाचा, लाश तो लगता है हिल रही है।"

गोपाल चाचा ने हाथ का काम पूरा कर लिया था। हाथ में कुदाल लेकर बोले, 'तेरे जैसा डरपोक आदमी भी मैंने कभी नहीं देखा नरेन्द्र! इतना डरता है तो फिर तू आता ही क्यों है? जा, जल्दी से बची हुई लकड़ियां उठा ला। मैं चिता तैयार करता हूं। डरपोक! गधा कहीं का!"

फिर दो मिनट बीत गए। अब की नरेन्द्र चौंककर पांच-सात कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया। डर के मारे उसके रोंगटे खड़े हो गए थे। वह घबराकर बोला, "नहीं चाचा, रंग-ढंग अच्छा नहीं लगा रहा है। सचमुच लाश तो हिल रही है।"

अबकी बार गोपाल चाचा ठठाकर हंसे और बोले, "अरे तुम कल के लौंडे मुझे डराना चाहते हो जिसने कम-से-कम हजार मुर्दे इन्हीं हाथों से जलाए होंगे?"

नरेन्द्र ने कहा, "वह देखिए, मुर्दा फिर हिल रहा है !"

गोपाल चाचा ने कहा, "हां, हिल रहा है। जानता है किस लिए ? भूत बनकर तुझे खा जाएगा, इसलिए।"

उनके मुंह की बात भी पूरी न हो पाई थी कि अकस्मात् लिहाफ और कथरी से लिपटा हुआ मुर्दा अर्थी के ऊपर उठ बैठा और भयंकर नकसुरी आवाज में चिल्ला उठा। "नां···नां···नरेन्द्र को नहीं मैं गोपाल को खाऊंगी।"

अरे बाप रे ! हम सभी एकदम सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए। गोपाल चाचा के रास्ते में लकड़ियों का ढेर था, वह इस ओर न भागकर सीधा गंगा की ओर भागे और पानी में घुस पड़े। उस कड़ाके की सर्दी में, बर्फ जैसे पानी में गले-गले तक पानी में खड़े वह चिल्लाने लगे, "बचाओ रे ! मैं मरा ! भूत खा लेगा ! जय हनुमान ! जय काली कलकत्ते वाली ! ओ३म ! ओ३म !! ओ३म !!!"

इधर वह भूत भी मुंह से लिहाफ हटाकर

चिल्लाने लगा, अरे निर्मल, "अरे नरेन्द्र, ओ हीरा।

अरे भागो मत ! मैं लल्लू हूं लल्लू। लौट आओ !"

लल्लू की आवाज़ हमारे कानों में पहुंची। अपनी मूर्खता पर अत्यन्त लज्जित होकर हम सभी लौट आए। गोपाल चाचा जाड़े से कांपते, बत्तीसी बजाते अधमरे-से होकर पानी से निकले।

लौंडों के सामने उनकी सारी डींगें और हेकड़ी चूर-चूर हो गई थी। लल्लू ने उनके पैर छूकर झेंपते हुए कहा, "सभी लोग वर्षा के डर से भाग गए, लेकिन मैं लाश को अकेला छोड़कर कैसे जाता! इसीसे लिहाफ के भीतर घुस गया था।"

गोपाल चाचा ने कहा, "अच्छा किया भैया, बड़ी अक्लमन्दी की। अब जाओ, देह में अच्छी तरह बालू मलकर स्नान कर आओ।"

जब लल्लू सामने से चला गया तो बोले, "ऐसा शैतान लड़का मैंने जिन्दगी में नहीं देखा।"

गोपाल चाचा ने मन में सोचा, इतना निडर होना तो उनके लिए भी संभव नहीं है। ऐसी भयानक रात में, अकेले श्मशान में हैजे के रोगी का गन्दा-घिनौना खिलौना—किसीसे लल्लू नहीं डरा। उसका दिल

न भूत से दहला न रोग से। यह क्या कम साहस की बात है!

जब लोगों ने चिता में आग देने के लिए लल्लू का नाम लिया तब गोपाल चाचा ने घोर आपत्ति करते हुए कहा, "न यह न होगा। लल्लू की मां यह सुनेगी तो हम लोगों पर बिगड़ेगी।"

दाहसंस्कार के बाद गंगा-स्नान करके हम लोग जब घर लौटे तो सूर्योदय हो रहा था।

४. आंखों-देखी

यह किस्सा लुटेरों का है। इन लोगों की बातें बहुतों ने सुनी तो होंगी और जो मुझ जैसे बूढ़े हैं उनमें से बहुतों ने देखी भी है। पचास-साठ साल पहले तक पश्चिमी बंगाल में—हुगली, बर्दवान आदि ज़िलों में—लुटेरों का उपद्रव बहुत अधिक था।

उससे भी पहले, दादी-नानी बताया करती थीं कि लोगों के आने-जाने का कोई भी रास्ता ऐसा नहीं था, जो सूर्य छिपने के बाद चलना खतरे से खाली हो। ये लुटेरे जैसे लोभी थे, वैसे ही

निर्दय भी। वे दल बनाकर, सड़क के किनारे के पेड़ों के झुरमुट में, झाड़-झंखाड़ में छिपे रहते थे। प्रत्येक लुटेरे के हाथ में एक बड़ी-सी लाठी और दूसरे हाथ में कच्चे बांस के भारी और छीलकर

नुकीले बनाए हुए छोटे-छोटे टुकड़े होते थे। इन टुकड़ों को 'पांवड़ा' कहते थे।

पथिक जब इनके सामने से कुछ आगे बढ़ जाता था, तब ये लुटेरे पीछे से निकलकर, उसके पैरों को निशाना बनाकर, ज़ोर से पांवड़ा मारते थे। इसका निशाना अचूक होता। असावधान यात्री जब अचानक चोट खाकर गिरता था तो इन लुटेरों का दल दौड़कर उसके पास पहुंच जाता और लाठियों से पीटकर उसे जान से मार डालता। इस काम में इन लुटेरों को तनिक भी हिचक या संकोच नहीं होता था। वे बिना सोचे-विचारे लोगों को मार डालते। इन लुटेरों की लाठियों से मरनेवाले अनेक लोगों की लाशें मैंने अपनी आंखों से देखी हैं।

बचपन में मुझे मछली पकड़ने का बड़ा शौक था। शौक क्या, बस, उसे सनक ही समझिए। मैं बड़े तड़के ही बंसी लेकर नदी के किनारे पहुंच जाता। छोटी-छोटी मछलियां ही मैं पकड़ पाता था, बड़ी-बड़ी नहीं।

हमारे गांव के किनारे एक छोटी-सी छिछली नदी थी। उसका पाट भी छोटा ही था और पानी भी यही बस कमर तक। सिवार की तो इस नदी

में भरमार थी । जहां सिवार नहीं होता वहां छोटी-छोटी मछलियां खेला करती थीं । मैं बंसी में आटे की गोली लगाकर पानी में डाल देता और मछली फंसने की प्रतीक्षा में बैठा रहता । इस काम में तब मुझे बड़ा आनन्द आता था ।

नदी के किनारे मछलियों की खोज में अकेले घूमते मैंने अनेक बार नदी के भीतर की कीचड़ और सिवार में लिपटी आदमी की लाश देखी है । कभी-कभी किसी लाश के सिर से, खून निकलने से आस-पास का पानी लाल हो गया होता ।

नदी के दोनों ओर घना जंगल और झाड़ियां थीं । न जाने ये लुटेरे कहां-कहां आदमी को मारकर इस सुनसान नदी के किनारे कीचड़ में गाड़ जाते थे । मैंने कभी नहीं देखा कि लाशों का, या लुटेरों का पता लगाने के लिए कभी पुलिस आई हो या कभी गांव का कोई आदमी थाने में रपट लिखाने गया हो । यह झंझट कौन करे और कौन मुसीबत मोल ले ! गांव के लोग सदा से मानते आए हैं कि पुलिस के काम में दखल नहीं देना चाहिए । पुलिस

के पास जाना 'आ बैल मुझे मार' वाली बात है । बाघ के सामने पड़कर भी कभी संयोग से प्राण बच सकते हैं किन्तु पुलिस से पाला पड़कर नहीं । इसलिए किसी की नज़र में कभी कोई ऐसी लाश पड़ जाती थी तो वह उधर से आंखें फेरकर चल देता था । इसके बाद रात होने पर सियारों के झुण्ड उसे धूमधाम से खाकर नदी में पानी पीकर, मुंह धोकर अपनी मांद में चले जाते थे । दूसरे ही दिन लाश का कहीं नाम-निशान भी नहीं रहता था ।

एक दिन मेरी भी शायद इन लुटेरों के हाथों यही दशा होती किन्तु भाग्य से मैं बच गया । वही घटना सुनाता हूं ।

मेरी अवस्था उन दिनों बारह वर्ष की थी । छुट्टी का दिन था । सवेरे-सवेरे मैं घर के एक कोने में छिपा पतंग बना रहा था । इतने में मुझे अपने मुहल्ले के नयन बागदी का स्वर सुनाई पड़ा । वह मेरी दादी से कह रहा था—"मां जी ! मुझे आज पांच रुपए दो । यह ऋण मैं तुम्हारे पोते को गाय का दूध पिलाकर चुका दूंगा ।

मेरी दादी नयनचन्द को बहुत चाहती थीं। उन्होंने पूछा, "अचानक तुझे रुपए की ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी रे नयन?"

उसने उत्तर दिया, "मांजी, एक अच्छी-सी गऊ लाऊंगा। बसंतपुर में मेरी बुआ रहती हैं। मेरे फुफेरे भाई ने कहला भेजा है कि चार-पांच गौएं रखना उसके लिए कठिन है। एक गऊ वह मुझे देना चाहता है। मैं जानता हूं वह मुझसे गऊ का मोल नहीं लेगा, तो भी चार-पांच रुपये जेब में रख छोड़ना ठीक रहेगा।"

दादी ने और कुछ न कहकर पांच रुपए भीतर से लाकर उसे दे दिए। वह प्रणाम करके चला गया।

मैंने सुन रखा था कि बसन्तपुर में 'बंसी' बनाने के लिए बढ़िया बांस मिलता है, इसलिए चुपचाप मैं नयन के पीछे-पीछे हो लिया। लगभग दो मील कच्ची सड़क पर चलकर ग्राउट्रङ्क रोड से बसन्तपुर जाने का रास्ता है।

गांव से लगभग एक मील निकल जाने पर नयन ने जब पीछे घूमकर देखा तो मुझे आता

देखकर वह बहुत बिगड़ा। मेरे बताने पर वह बोला, "तुम्हारे लिए दस बंसियों लायक बांस वह काट लाएगा।" तब भी मैं लौटने के लिए राजी नहीं हुआ। मैंने साथ चलने के लिए उससे बहुत कहा पर वह नहीं माना। अन्त में मुझे पकड़कर वह वापस घर ले आया।

मेरे रोने-धोने से दादी जी तो कुछ नरम पड़ीं पर नयन मुझे साथ ले-जाने के लिए किसी तरह भी तैयार नहीं हुआ। नयन बोला, "मांजी जाने-आने में आठ कोस के लगभग है। खतरा है। अगर मुझे लौटने में देर हो गई तो आप ही बताइए, अकेला गऊ को संभालूंगा, लड़के को संभालूंगा या अपने को संभालूंगा।"

रात को क्या खतरा है, यह किसीको बताने की आवश्यकता नहीं। सभी जानते हैं। अब तो दादी जी भी एकदम 'ना' कर बैठीं। मुझसे बोलीं, "तू कभी नहीं जा सकता। अगर अपनी मर्जी से जायगा तो तेरे मास्टर को चिट्ठी लिखकर बता दूंगी और वह कम-से-कम पचास बेत मारेंगे।"

विवश होकर मैंने दूसरा उपाय सोचा। नयन

के चले जाने पर मैं तालाब में नहाने का बहाना बनाकर शरीर में तेल की मालिश करके और अंगोछा कंधे पर रखकर घर से निकल पड़ा। नदी के किनारे-किनारे जंगल और आम-कटहल के बागों में होकर दो-ढाई मील तक सरपट दौड़ता हुआ चला गया। जिस जगह पर हमारे गांव का कच्चा रास्ता बड़ी पक्की सड़क से आकर मिला था, उसी जगह आकर मैं खड़ा हो गया और लगभग दस मिनट के बाद ही मुझे नयन आता दिखाई दिया।

मुझे खड़ा देखकर वह पहले तो बहुत बिगड़ा, उसके बाद मैं किस बहाने घर से आया हूं, यह सुनकर हंस पड़ा। उसने कहा, "अच्छा ब्राह्मण देवता, जो भाग्य में लिखा है, वह होकर रहेगा। इतनी दूर आकर अब दोबारा लौट नहीं सकता।"

नयन ने सतगांव की एक दुकान से मेरे खाने के लिए चूड़ा और बताशे खरीदकर मेरी धोती के छोर में बांध दिए। चलते-चलते लगभग दोपहर को हम दोनों बसतपुर में नयन की बुआ के घर पहुंचे। नयन की बुआ का घर अच्छा खाता-पीता

था। घर के पास ही कुत्ती नामक नदी थी। नदी छोटी थी पर पानी खूब था। मैं नदी में नहा आया। बुआ की बड़ी बहू केले के पत्ते में चिउड़े, दूध और केले आदि परोस गई। भोजन के बाद नयन को बुआ ने कहा, "बच्चा चार-पांच कोस पैदल चलकर आया है और अभी फिर लौटकर भी जाना है। थोड़ी देर लेट कर आराम कर लो। तब तक धूप भी कुछ कम हो जाएगी।"

हम दोनों ही थके हुए थे, इसलिए सो गए। हमारी आंख जब खुली तो चार बज चुके थे। दिन ढलता देखकर नयन कुछ चिन्तित तो हुआ पर बोला कुछ नहीं। दस-पन्द्रह मिनट में हम दोनों वहां से चल पड़े। चलते समय नयन ने बुआ के पैर छुए और बुआ को गाय का मोल पांच रुपए देने लगा किन्तु उन्होंने नहीं लिए बोलीं, "अपने बच्चों को इन रुपयों की मिठाई खिला देना।"

मेरे कंधे पर बांस की खपच्चियों का पतला-सा गट्ठा था। नयन के एक हाथ में गऊ की रस्सी थी और दूसरे में बांस की लम्बी लाठी। गऊ के साथ

हमें धीरे-धीरे चलना पड़ रहा था। अभी दो कोस भी न चल पाए थे कि शाम हो गई। कुछ देर बाद ही आकाश में चन्द्रमा दिखाई देने लगा। रास्ते के दोनों ओर बड़े-बड़े पेड़ों की पांतें थीं और आर-पार से उनकी शाखाएं आपस में ऐसे मिल गई थीं कि चांदनी रात में भी रास्ते में अंधेरा था। कहीं-कहीं पत्तों में से छनकर चांदनी का प्रकाश सड़क पर पड़ रहा था।

नयन ने कहा, भैया! तुम मेरी बाईं तरफ आकर अपने बायें हाथ से गऊ की रस्सी पकड़ लो। मैं तुम्हारे दाहिने रहूंगा।"

मैंने पूछा, "क्यों नयन दादा?"

नयन ने कहा, "कुछ नहीं, यों ही। आओ, चलें।"

मैं बालक होने पर भी समझ गया कि नयन की आवाज में घबराहट है। धीरे-धीरे पक्की सड़क छोड़कर हम कच्चे रास्ते पर पहुंच गए। जंगल और झाड़-झंखाड़ की अधिकता से अंधेरा और भी घना हो गया। आर-पार पेड़ों की शाखाओं ने आपस में गुंथकर चांदनी आने के लिए जरा-भर भी

जगह नहीं छोड़ रखी थी। ग्वालबाल गोधूलि बेला में इसी रास्ते से पशुओं को घर ले-आ चुके थे इसीलिए उनके खुरों से उड़ी हुई धूल अब भी नाक और मुंह में भरी जा रही थी।

इसी समय सामने लगभग पचीस-तीस गज की दूरी पर किसीकी चीख सुनाई दी—"बाप रे! मार डाला रे! अरे कोई बचाओ!" इस चीख-पुकार के साथ ही तड़तड़ लाठियां बरसने की आवाज आई और फिर सन्नाटा छा गया।

नयन खड़ा हो गया। बोला, "खतम हो गया!"

मैंने पूछा, "क्या खतम हो गया नयन दादा?"

"एक आदमी"—कहकर, कुछ देर खड़े रहकर उसने कुछ सोचा, उसके बाद कहा, "चलो भैया, जरा होशियार होकर चलना होगा।"

गऊ बाईं ओर, नयन दाहिनी ओर और मैं दोनों के बीच, इस तरह हम आगे बढ़ने लगे।

बचपन से लोगों से सुनता आ रहा हूं, बीच-बीच में लुटेरों द्वारा मारे गए लोगों की लाशें भी देखी हैं, इसलिए लड़का होने पर भी सब समझ गया।

कुछ देर पहले की 'अरे बचाओ-बचाओ' की पुकार

अब भी मेरे कानों में गूंज रही थी। मैंने डरते-डरते

कहा, "नयन दादा, वे सब तो सामने ही खड़े हैं, हम लोग जाएंगे कैसे ? अगर मारें···"

नयन ने कहा, "नहीं भैया, मेरे रहते नहीं मारेंगे। ये साले बड़े डरपोक होते हैं।"

गऊ, मैं और नयन तीनों धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। भय के मारे पैर कांप रहे थे, छाती में सांस रुक रही थी। ऐसी हालत थी। घने अंधेरे के कारण कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। आठ-दस गज आगे बढ़ते ही देखा, हम लोगों को आता देखकर पांच-छः आदमी दौड़कर एक पेड़ के तने की आड़ में छिप गए।

नयन ने रुककर बड़ी रोबीली आवाज के साथ गर्जकर कहा—'खबरदार ! ब्राह्मण का लड़का मेरे साथ है। अगर पांवड़ा मारा तो तुममें से एक को भी जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

किसीने इसका जवाब नहीं दिया। कुछ आगे बढ़ने पर हमने देखा, रास्ते में एक आदमी मुंह के बल मरा पड़ा है। उसके ऊपर थोड़ी-सी चांदनी पड़ रही थी। नयन ने झुककर देखा और हाय-हाय

कर उठा। उस आदमी के नाक, कान और मुंह से खून बह रहा था। केवल पैर कांप रहे थे। उसके कंधे की भिक्षा की झोली वैसी-की-वैसी ही कंधे पर थी, किन्तु भिक्षा का अन्न इधर-उधर बिखर गया था। उसके हाथ का इकतारा लाठियों की चोट से चूर-चूर होकर एक ओर पड़ा हुआ था।

नयन सीधा उठकर खड़ा हो गया। बोला, "ओ पापियो! ओ नरक के कीड़ो! तुमने व्यर्थ ही एक भिखारी के, एक वैष्णव के प्राण ले लिए! यह तुमने क्या किया?"

नयन का भयानक स्वर जैसे सहसा करुणा से भर गया। लेकिन दूसरी ओर से कोई उत्तर नहीं आया। नयन के इस दुःख और करुणा का मुख्य कारण यह था कि वह स्वयं भी वैष्णव था। उसके गले में मोटे-मोटे तुलसी के दानों की माला थी। नाक से माथे तक लम्बा तिलक था। अपने घर में उसने छोटा-सा ठाकुरद्वारा भी बना रखा था जिसमें चैतन्य महाप्रभु का चित्र रखा हुआ था। सुबह एक हजार मंत्र जाप किए बिना वह पानी

तक नहीं पीता था। बचपन में पाठशाला में उसने केवल वर्णमाला पढ़ी थी किन्तु अभ्यास करके वह अब इस योग्य हो गया था कि छपी हुई बंगला-भाषा की पुस्तक पढ़ लेता था। दिये की लौ में ठाकुरद्वारे के दालान में बैठकर वह विश्राम सागर, ब्रजविलास आदि वैष्णव ग्रन्थों का नित्य रात को देर तक स्वाध्याय करता था। मांस वह खाता नहीं था और बंगालियों के लिए कठिन काम मछली खाना छोड़ने की वह मन-ही-मन तैयारी कर रहा था।

नयन के वैष्णव बनने की भी एक कहानी है। उसकी अवस्था चालीस के लगभग है, किन्तु जब पच्चीस-तीस थी, तब डकैती के एक मामले में फंसकर, वह एक बार सालभर जेल में रह आया था। मेरी दादी के एक फुफेरे भाई जिले के बड़े नामी वकील थे। दादी जी ने उनके द्वारा मुकदमे की पैरवी कराकर और बहुत-से रुपए खर्च कर नयन को छुड़ाया था।

कैद से छुटकारा पाते ही वह सीधा नवद्वीप चला गया और किसी गोस्वामी से मंत्र लेकर, मूंछ

मंडाकर और तुलसी की माला पहनकर गांव लौटा। उस दिन से वह पूरा वैष्णव है। नयन कभी-कभी आकर मेरी दादी के पैरों पर माथा टेक जाता था। दादी के पैरों को वह हाथ से नहीं छू सकता था, इसलिए किसी भी पेड़ का एक पत्ता लाकर दादी के पैरों के पास रख देता था और दादी जी उस पत्ते को अपने पांव से छू देती थीं, बस, नयन उस पत्ते को उठाकर माथे से छुआकर कहता था, "मांजी, आशीर्वाद दीजिए कि अब मरकर मैं ऊंची जाति में जन्म लूं जिससे तुम्हारे पैरों की धूल अपने हाथ से लेकर माथे में लगा सकूं।"

दादी जी भी स्नेह के साथ कहतीं, "हां रे नयन! अब की तू मेरे आशीर्वाद से ब्राह्मण का जन्म पाएगा।"

नयन की आंखें गीली हो जातीं। वह कहता, इतनी बड़ी आशा तो नहीं करता। मैं महापापी हूं। मेरे पापों की कोई सीमा नहीं है। यह बात और कोई भले ही न जानता हो, आप तो अच्छी तरह जानती हैं। आपसे तो मैंने कभी कुछ छिपाया नहीं।"

दादी कातर नयन से नयन को आश्वासन देती हुई कहतीं, "अरे तेरे सब पाप मिट गए हैं। तुम्हारे जैसे भक्त और ईश्वर-विश्वासी लोग इस संसार में हैं ही कितने? बस, तू तो अपनी धर्म-मर्यादा पर चलता रह। तेरी करनी तेरा लोक परलोक बना देगी। इसके लिए कुछ भी चिन्ता मत कर!"

आश्वस्त नयन धोती की कोटर से आंखें पोंछता-पोंछता चल देता। उसे जाते देख दादी जी कहतीं, "सुन रे! कल यहीं आकर प्रसाद पाना। भूलना मत रे।

यह सब मैंने कई बार अपनी आंखों से देखा-सुना है। इसलिए जिन वैष्णवों की वह तन-मन से सेवा करता है, उन्हीं में से एक की निर्दयतापूर्वक की गई हत्या देखकर, यदि वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया तो आश्चर्य कोई की बात नहीं थी।

□ □ □ □

नयन बोला, "बेचारा वैष्णव भीख मांगकर घर लौट रहा था। पापियो, उससे तुम्हें क्या मिल सकता था जो तुमने उसकी हत्या कर डाली? मुश्किल से

तुम्हें दो-चार आने उसके पास मिले होंगे। जी करता है, तुम लोगों को भी इसी तरह मार डालूं।

इस बार पेड़ की ओट में छिपे लुटेरों की ओर से उत्तर आया, "दो-चार आने पैसे ही कौन राजी-खुशी देता है। तेरे भाग अच्छे हैं जो तू बच गया। अब यह धरम-करम की बातें अपने ही पास रख, हमें मत सुना। भला चाहता है तो यहां से भाग जा।"

उसकी बात पूरी होने से पहले ही नयनसिंह गर्जना कर उठा, "कुत्ते के पिल्लो! कायरो! मैं तुम्हारे डर से भागूंगा?"

इतना कहकर दादी के दिए हुए पांचों रुपयों को खनखनाते हुए बोला, "देखो, मेरे पास कितने रुपए हैं। हिम्मत हो तो सब मिलकर आओ और छीन लो। किन्तु तुम्हें एक बार फिर चेतावनी देता हूं। मेरे साथ यह जो ब्राह्मण का लड़का है, इसका बाल भी बांका हुआ तो तुम सबको सदा के लिए यहीं सुलाकर घर जाऊंगा। मैं शेतला गांव का नयन छाती हूं, यह जान लो। जरा बताओ तो, तुमने कभी मेरा

नाम सुना है या यों ही हाथ में लाठी लेकर भिखारियों को मारकर बहादुर बनते हो? सालो! तुम तो सियारों और कुत्तों से भी गए-बीते हो!"

अब भी किसी लुटेरे ने कोई उत्तर नहीं दिया। दो-तीन मिनट तक चुप रहकर नयन ने और कड़क-कर गाली देते हुए कहा, "गीदड़ो! आओगे रुपए छीनने या मैं जाऊं?"

फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला। रास्ते में दो-तीन पांवड़े पड़े हुए थे, वे सब नयन ने उठा लिये। फिर बोला, "चलो भैया, अब घर चलें। देर हो रही है। तुम्हारी दादी तुम्हारे लिए चिन्ता कर रही होंगी। ये सब सियार-कुत्तों के बच्चे किसी मर्द के सामने कैसे फटक सकते हैं! यदि तुम इन्हें बसी की एक खपच्ची लेकर ही मारते जाओ, तो भी ये डर-पोक सिर पर पैर रखकर भाग जाएंगे।"

इतनी देर में मेरा डर दूर हो गया था और हिम्मत बंध गई थी। मैंने कहा, "जाऊं नयन दादा?"

नयन हंस पड़ा। बोला, "रहने दे भैया, कोई

जरूरत नहीं। सियार-कुत्ते आदमी का मुकाबला तो नहीं करते, किन्तु अवसर मिलते ही काटने से बाज नहीं आते। ये भी वैसे ही हैं।"

हम दोनों आगे बढ़े। नयन चुप था। मैं बार-बार उससे सवाल पूछता रहा पर उसने एक का भी जवाब नहीं दिया। वह केवल 'हां-हूं' कह देता। कुछ आगे जाकर एक बड़े पेड़ की छाया में, गहरे अंधेरे में वह ठिठककर खड़ा हो गया। बोला, "भैया अपनी आंखों के सामने वैष्णव की हत्या होते देख-कर हत्यारों को दण्ड दिए बिना मुझसे आगे नहीं बढ़ा जाएगा। ब्राह्मण वैष्णव की जान लेने की सजा मैं इन्हें जरूर दूंगा। इनसे जरूर बदला लूंगा।

मैंने पूछा, "बदला कैसे लोगे?"

नयन बोला, "क्या मैं इनमें से एक साले को भी नहीं पकड़ सकूंगा? हम दोनों मिलकर लाठी से पीट-पीटकर उसे मार डालेंगे।"

पीटकर मार डालने की खुशी से मेरा मन नाच उठा। जैसे यह भी कोई नई तरह का खेल

हो। इन लुटेरों के बारे में मैंने तरह-तरह की बातें सुनी थीं, किन्तु आज लगा कि वे सब झूठ हैं। नयन ने जाने नहीं दिया, नहीं तो मैं ही पीछा करके एक लुटेरे को पकड़ता। मैंने कहा, "नयन दादा, तुम अच्छी तरह एक को पकड़े रहना, मैं अकेला ही पीटकर उसे मार डालूंगा। पर कहीं पीटने से मेरी बंसी की लकड़ी टूट गई तो?"

नयन ने मेरी बाल-सुलभ बात सुनकर, हंसकर कहा, "बंसी की लकड़ी से नहीं मरेगा भैया, यह मेरा सोटा लो यह कहते हुए नयन ने सड़क पर से उठाए पांवड़ों में से एक निकाला और मेरे हाथ में थमाकर कहा, "तुम गाय को लेकर यहीं खड़े हो जाओ। मैं इनमें से अभी एक-दो को पकड़ लाता हूं। किन्तु रोने-चिल्लाने की आवाज सुनकर डरना मत!"

मैंने कहा, "डर किस बात का! यह सोटा जो मेरे हाथ में है।"

तब नयन ने बाकी दोनों पांवड़े बगल में दबाए, लाठी दाएं हाथ में ली और फिर सड़क छोड़कर

झाड़ियों के किनारे-किनारे, घुटनों के बल, दो हाथों के सहारे लुटेरों की ओर लौट पड़ा।

लुटेरों ने समझा था कि हम लोग चले गए, इससे वे निश्चिन्त होकर लौट आए थे और मरे हुए भिखारी की तलाशी ले रहे थे और उसकी झोली देख रहे थे। उनमें से एक की नजर पास ही पेड़ की आड़ में खड़े नयन पर पड़ी। वह जोर से चिल्लाया, "वह कौन छिपा खड़ा है?"

नयन ने बड़े रोब से उत्तर दिया, "मैं नयन खाती हूं। जहां खड़ा है, वहीं खड़ा रहा। भागा नहीं कि मरा!"

नयन की बात अभी पूरी भी न हुई थी कि मैंने लोगों के भागने की आवाज सुनी और साथ ही रोने की अस्पष्ट आवाज सुनी और लगा कि कोई झाड़ी के ऊपर गिर पड़ा है।"

नयन चिल्लाकर मुझसे बोला, "भैया एक साले को पकड़ लिया है। और सब तो भाग गए।"

यह शुभ समाचार सुनकर मैं अपनी जगह खड़ा-

खड़ा मारे खुशी के उछलने लगा। मैंने जोर से चिल्लाकर कहा, "दादा, इसे पकड़कर यहां ले आओ। मैं सोटे से पीटकर मारूंगा। तुम अपने-आप मत मार डालना।"

नयन ने कहा, "मैं नहीं मारूंगा। तुम्हीं मारना।"

तभी कराहने की आवाज सुनाई दी। संभवतः नयन ने उसे लाठी का हूरा मारा होगा। दो मिनट के बाद ही मैंने देखा कि एक आदमी लंगड़ाता, लड़खड़ाता-सा आ रहा है और उसके पीछे पीछे नयन है।

मेरे पास आते ही वह आदमी दहाड़ मारकर रोता हुआ मेरे पैरों पर गिर पड़ा। तभी नयन ने लाठी का एक हूरा मारकर उसे उठाकर खड़ा कर दिया। अब मैंने उस आदमी के चेहरे की ओर देखा तो कांप उठा। उसने चेहरे पर कालिख पोत रखी थी और बीच-बीच में चूने की सफेद बिन्दियां बनी हुई थीं। वह आदमी दुबला-पतला और खूब लम्बा था। कपड़ों के नाम पर उसके बदन पर एक चीथड़ा-भर था और वह रोता जा रहा था।

उसके गाल पर एक जोर का थप्पड़ रसीद करते हुए नयन ने कहा, "कुत्ते के पिल्ले ! चुप कर और मेरी बातों का ठीक-ठीक उत्तर दे। पहले तो यह बता कि तुम कितने आदमी थे। सबका नाम और घर का पता बता।

पहले उसने कुछ आना-कानी की, पर पीठ पर लाठी का एक हूरा लगते ही सबके नाम-पते बता दिए।

नयन ने कहा, "ठीक है। अब बता, इस भिखारी के गिर पड़ने पर तूने लाठी के कितने हाथ मारे ?"

उसने डरते-डरते कहा, "यही कोई पांच-सात।"

नयन ने दांत पीसकर कहा, "अच्छा पांच-सात हाथ ही सही। अब तू ठीक-ठीक उसी तरह लेट जैसे वह भिखारी लेटा पड़ा है।"

फिर नयन ने मुझसे कहा, "इधर आ जाओ ! देखो, इस सोटे के पांच-सात हाथों से ही इसका काम पूरा कर देना चाहिए। आज देखूंगा कि तुम्हारे हाथों में कितना जोर है।" फिर उस आदमी से कहा, "साले ! तू अभी तक नहीं लेटा ? चल, जल्दी लेट !

इतना कहकर नयन ने उसे कान से पकड़कर और उसके अपने-आप लेटने से पहले ही उसकी पीठ में कसकर दो-तीन लातें जमाईं जिससे वह औंधे मुंह गिर पड़ा।

तब नयन ने मुझसे कहा, "हां भैया, अब मारो ताककर लाठी के दो-चार बार। दो-तीन हाथ पड़ते ही यह दैं बोल जाएगा। तुम्हें ज्यादा कष्ट नहीं करना पड़ेगा।" यह कहते-कहते नयन दादा का स्वर और चेहरा बदल गया। वह चेहरा देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। हाथ-पैर कांपने लगे। मैंने रुआंसा-सा होकर कहा, "नयन दादा। मुझसे यह काम नहीं होगा।"

नयन ने कहा, "तुमसे नहीं होता तो मैं ही इसे ठिकाने लगाता हूं।"

मैंने विनती के स्वर में कहा, "नयनदादा ! छोड़ दो। इसे मारो मत।"

किन्तु लातें खाने के बाद वह आदमी जब लेटा था तब से उसने न तो हाथ-पैर हिलाए थे और न

प्राणों की भीख ही मांगी थी।

मैंने कहा, 'हम इसे बांधकर थाने पहुंचा दें।"

यह सुनकर तो नयन चौंक उठा। बोला, "थाने में ? पुलिस के हाथ ?"

मैंने कहा, "हां। इसने जैसे एक आदमी को मारा है, वैसे ही वे भी इसे फांसी पर चढ़ाएंगे। खून की सजा फांसी।"

कुछ क्षण तक नयन चुप रहा। उसके बाद उस लुटेरे को लाठी का एक हूरा देकर बोला, "अबे साले, उठ!"

लेकिन वह तो जरा भी हिला-डुला नहीं। नयन ने कहा, "साला मर गया क्या ? यह तो हड्डियों का ढांचा मात्र है। लगता है दो-तीन दिन से इसके पेट में अन्न का दाना भी नहीं पड़ा है। फिर भी दूसरों को लूटने-मारने निकला था। जा साले! भाग यहां से। अपने घर जा!"

पर वह फिर भी ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। तब नयन को कुछ खटका हुआ। नयन ने झुककर उसकी

नाक पर हाथ रखकर कहा, "नहीं, मरा नहीं है। बेहोश हो गया है। होश आने पर अपने-आप उठकर चला जाएगा। चलो, अब हम भी घर चलें। बहुत देर हो गई। मां जी चिन्ता कर रही होंगी।"

चलते-चलते मैंने कहा, "उसे छोड़ क्यों दिया नयन दादा ? पुलिस में दे देते तो अच्छा होता!"

नयन ने कहा, "क्यों भैया ?"

मैंने कहा, "खून करने से फांसी की सजा होती है। स्कूल की पुस्तक में लिखा है।"

नयन ने कहा, "क्या सचमुच लिखा है भैया ?"

मैंने कहा, "लिखा क्यों नहीं! अभी घर पहुंचाकर तुम्हें दिखाता हूं।"

नयन ने चकित होकर कहा, "तुम कह क्या रहे हो ? एक आदमी की हत्या के बदले में एक और आदमी तो मारा जाता है!"

मैंने कहा, "हां, ठीक तो है। यही तो उसकी उचित सजा है।"

नयन ने मुस्कराकर कहा, "किन्तु संसार में सभी उचित बातें तो होती नहीं।

मैंने कहा, "वाह! क्यों नहीं होतीं?"

नयन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। जरा देर सोचकर बोला, "जान पड़ता है, सभी लोग अपराधियों को पकड़ नहीं सकते, इसलिए।"

क्यों नहीं पकड़ सकते? क्यों एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को मारता है? यह सब उस दिन भी मैं नहीं समझ सका था और आज भी नहीं समझ सका हूं—यह बात सोचते-सोचते कुछ दूर चलने के बाद मैंने पूछा, "नयन दादा! क्या ये लुटेरे अब भी मनुष्य की हत्या करेंगे?

नयन ने कहा, 'नहीं भैया, अब नहीं करेंगे। जब तक मैं जीवित हूं, तब तक वे यह काम दोबारा नहीं करेंगे।"

इस उत्तर को सुनकर मुझे ज्यादा प्रसन्नता नहीं हुई। उन्हें फांसी पर लटकाना ही मेरी समझ के अनुसार ठीक था।

मैंने कहा, "लेकिन वे लोग हत्या करके बच तो

गए। उन्हें अपने कुकर्मों की सजा तो नहीं मिली।"

नयन अनमना-सा होकर कुछ सोच रहा था। बोला, "कौन जाने, हो सकता है, कभी उन्हें अपने किए की सजा मिले। मैं इस बारे में ज्यादा नहीं जानता। हां, तुम्हारी दादी सब-कुछ जानती हैं। तुम जब और बड़े होओगे, तब किसी दिन उनसे पूछना।"

किन्तु और बड़े होने तक मैं सन्तोष नहीं रख सका। घर में पैर रखते ही सब हाल—केवल अपने हाथ-पैर कांपने की व्यर्थ की बातें छोड़कर—आंखें मटका-मटकाकर और हाथ चला-चलाकर विस्तार से कह सुनाया। आदि से अन्त तक हम लोगों को लुटेरों को भगाने की कहानी सुनकर दादी ने केवल एक गहरी और लम्बी सांस छोड़ी और मुझे खींचकर छाती से लगा लिया।

नयन अब तक चुपचाप सुन रहा था। मेरी बात पूरी होते ही पांचों रुपए दादी के पैरों के पास रखकर उसने कहा, "मां जी, गाय तो बिना रुपयों के ही मिल गई। तुम्हारे रुपए ज्यों-के-त्यों लौट आए।

न लिये बुआ ने और न लिये रास्ते में तुम्हारी मंझली बहू के भाइयों के दल ने।

दादी जरा हंसकर बोलीं, 'मंझली बहू मिलेगी तो उसको कहूंगी। किन्तु सुनो, मैं वे रुपए वापस नहीं लूंगी। इन्हें उठा ले। ठाकुरजी के भोग में इनका उपयोग करना! पर एक बात आज मैं तुमसे कहे देती हूं, अभी तू सच्चा वैष्णव नहीं बन सका रे नयन!"

नयन ने कहा, "क्यों मां जी?"

दादी बोली, सच्चे वैष्णव क्या रुपए खनखनाकर दूसरों को अपराध करने के लिए उकसाते हैं। मान लो, लुटेरे लोभ में आकर तुम लोगों पर धावा बोल देते तो क्या होता?"

नयन ने कहा, "होता क्या! पांच-छः और मरते। उससे नयन की पाप की गठरी अधिक भारी तो नहीं हो जाती मां जी?"

दादी चुप हो रहीं। नयन की बात का अर्थ वह

जानती थीं और नयन जानता था। फिर कोई बात नहीं हुई। नयन ने धरती पर सिर रखकर दूर से दादी को प्रणाम किया, पांचों रुपए माथे से छुआए और चुपचाप चला गया।

सुबोध बाल पॉकेट बुक्स
की
मनोहर चटपटी पुस्तकें
अगले पृष्ठ पर देखें

❖